ज्ञानविविधा
कला, मानविकी और सामाजिक विज्ञान की सहकर्मी-समीक्षित, मूल्यांकित, त्रैमासिक शोध पत्रिका

ISSN : 3048-4537(Online)
3049-2327(Print)
IIFS Impact Factor-2.25
Vol.-2; Issue-1 (Jan.March) 2025
Page No.- 134-137
©2025 Gyanvividha
www.journal.gyanvividha.com

डॉ. विश्वनाथ चंद्रकांत पटेकर
हिंदी विभागाध्यक्ष,
महात्मा फुले कला, विज्ञान एवं वाणिज्य महाविद्यालय, पनवेल.

Corresponding Author :
डॉ. विश्वनाथ चंद्रकांत पटेकर
हिंदी विभागाध्यक्ष,
महात्मा फुले कला, विज्ञान एवं वाणिज्य महाविद्यालय, पनवेल.

हिंदी सिनेमा और साहित्य

सिनेमा ने साहित्य, संगित और ललित कला के अनेक विद्वानों को अपनी और आकर्षित किया है। आरंभ में मल्लिका पुखराज, रसोवन बाई, बेगम अख्तर, उस्ताद झंडे खाँ, उस्ताद अल्ला रखा खाँ बाद में उस्ताद अली अकबर खाँ, पंडित रविशंकर आदि इसमें शामिल हुए है। साहित्य में पंडित बेताब, पंडित सुदर्शन, मुंशी प्रेमचंद, जोश मलिकाबादी, सदाहत हसन मंटो, कृष्ण चंदर, राजेंद्र सिंह बेदी आदि। रामायण महाभारत जैसे महाकाव्यों पर भी फिल्में बनी। उस समय तकनिकी प्रस्तुती बेहतर न होते हुए भी उस फिल्म की आत्मा बेहतर हो सकती थी तो आज की सिनेमा की आत्मा क्यों गायब होनी चाहिए। आज के इस वैश्विकरण में तकनीकी क्षमता तो बढ़ गई है परंतु सिनेमा का मूल्यबोध गायब हो जा रहा है। जैसे-जैसे सिनेमा की तकनीकी क्षमता और आयु बढ़ती गयी तब सिनेमा ने अपने लिए जैसे स्वतंत्र लेखक और संगितकार का प्रलोभन हुआ।

सिनेमा के बारे में ओर कहा जाऐ तो दर्शकों की भागीदारी है। साहित्य में पाठकों की भागीदारी नहीं होती सिनेमा के हर एक दर्शक के पास खेल के दर्शकों की तरह हर एक स्थिति के लिए सुझाव होते है। सिनेमा का दर्शक पोषाक, संगित, कलाकार और बजटपर बहस करता है। परिणाम स्वरूप साहित्यिक कृति में काफी फेरबदल हुआ है। लेखक स्वंय यह बदल कर सकता भी है। सामान्य आदमी की नजर में लेखक ईश्वर-संतान होते है। फिल्मकार कभी नहीं होता। सिनेमा में गीत और संगित रचनात्मकता के विभिन्न चरणों में प्रवाहित है। स्वतंत्रता को पश्चात गीत और संगीत का मूल्यांकन साहित्य नाटक और आंशिक रुप में फिल्म के माध्यम से किया गया।

सिनेमा, साहित्य, गीत या अन्य ललित कलाएँ अपने समय के जीवन का केवल तस्वीर मात्र नहीं होती है। वे जीवन को उन्नत और शिक्षित बनाती है। यही उनकी सामाजिक भूमिका भी है, "चिड़ियाँ सोने के पिंजडे में वही गीत नहीं

गुनगुनाती जो खुले आकाश में गाती है। दुर्भाग्य से कलाओं की स्वतंत्रता, वाणिज्यिक घरानों के पिंजड़े में कैद हो गयी है और वे उनका दोह न कर रहे है। इसके लिए, अपराधी केवल संगितकार और गीतकार नहीं हैं, बल्कि अभिनेता अभिनेत्री सहित वे सब है जो इस तरह की फिल्मों के निर्माण में शामिल होते है। हत्यारा केवल वह नहीं होता जो छुरा मारता है बल्कि वे भी होते है जो उसके अपराध के साथ होते है।"[1]

सिनेमा अभिव्यक्ति का एक सशक्त माध्यम के रूप में उभरा है। आज के आधुनिक युग में सिनेमा ने मानवीय जीवन में अपना अहम स्थान बनाया है। सिनेमा के माध्यम से समाज की भावनाओं का अंकन होता है। जिस तरह समाज के चहुमुखी विकास में साहित्य की भूमिका महत्वपूर्ण होती है उसी तरह सिनेमा भी अपनी अहम भूमिका निभाता है। साहित्य समाज में घटित घटनाओं को संवेदना के साथ उद्घाटित करता है, तो सिनेमा समाज के विभिन्न पहलुओं को लेकर जन- समुदाय का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करता है। 21 वीं शताब्दी के इस युग में साहित्य कृतियों को आधार बनाकर सिनेमाओं का निर्माण कार्य जोरों पर हो रहा है। इस अर्थ में साहित्य और सिनेमा का गहरा संबंध दिखाई देता है। हरीश कुमार के मतानुसार "साहित्य में जहाँ साहित्यकार विभिन्न पक्षों से प्रभावित होता हुआ साहित्यिक रचना करता है वहीं सिनेमा निर्देशक उस साहित्यिक कृति को मूल रूप में रखते हुए ऐसा नया रूप देता है कि जिससे वह जीवंत और प्राणवान हो उठती है।"[2] आज पौराणिक, ऐतिहासिक कथानकों से लेकर के विभिन्न सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक विषयों पर लिखित साहित्यिक कृतियों पर फिल्मों का निर्माण हो रहा है।

साहित्य समाज की देन माना जाता है। उसे किसी बंधन में नहीं बांधा जा सकता। साहित्य में मानवीय भावनाओं का, सम- सामयिक स्थितियों का और मानवीय संवेदनाओं का चित्रण होता है तो फिल्म में मनुष्य जीवन से संबंधित विभिन्न पक्षों को आधार बनाकर चलचित्र के द्वारा उसे पर्दे पर दिखाया जाता है। अर्थात साहित्य और सिनेमा मूलतः मानवीय समाज से संबंधित विभिन्न पहलुओं के उद्घाटन का सशक्त माध्यम के रूप में सामने आते हैं। कभी- कभी फिल्म निर्देशक किसी भी साहित्यकार की लोकप्रिय रचना को आधार बनाकर उसका फिल्मांतरण करता है। हिंदी सिनेमा के क्षेत्र में आरंभ से ही साहित्यिक कृतियों पर फिल्मों का निर्माण होता दिखाई देता है। भीष्म साहनी के उपन्यास 'तमस' पर निर्देशक गोविंद निहलानी ने फिल्म बनायी जिसे दूरदर्शन तथा अंतरराष्ट्रीय फिल्म महोत्सव में दिखाया गया। 'तमस' के माध्यम से साहित्य और सिनेमा के संबंध को लेकर फिल्म जगत में काफी चर्चा हुई है। बाद में प्रेमचंद के 'गोदान' फनीश्वरनाथ 'रेणु' की कहानी 'तीसरी कसम', भगवतीचरण वर्मा के उपन्यास 'चित्रलेखा, धर्मवीर भारती के 'सूरज का सातवां घोड़ा' आदि कई साहित्यिक कृतियों पर फिल्म निर्माण का सिलसिला शुरु हुआ। आज केवल हिंदी ही नहीं तो विश्व की सभी भाषाओं की लोकप्रिय साहित्यिक रचनाओं पर फिल्मों का निर्माण हो रहा है। हिंदी सिनेमा के क्षेत्र में हिंदी, अंग्रेजी, पंजाबी, मराठी, गुजराती, बंगला आदि विभिन्न भाषाओं में प्रकाशित साहित्य कृतियों पर फिल्मों का निर्माण हो रहा है जिसे समाज में काफी लोकप्रियता मिल रही है। सिनेमा के माध्यम से साहित्य की लोकप्रियता में वृद्धि होती दिखायी दे रही है। डॉ. सुधेश ने लिखा है- "सिनेमा के सहयोग से साहित्य भी प्रभावित तथा अधिक लोकप्रिय बनता है। कितनी ही साहित्य कृतियाँ फिल्मीकरण के बाद लोकप्रियता के आकाश को छू चुकी है। भीष्म साहनी का उपन्यास 'तमस' फिल्मीकरण के बाद कई संस्करणों में बिका। भगवतीचरण वर्मा के 'चित्रलेखा' को भी फिल्म बनने के बाद बड़ी लोकप्रियता मिली। अनेक उपन्यासों, कहानियों, नाटकों पर जो फ़िल्में बनी हैं, वे साहित्य से फिल्म के गहरे रिश्ते को रेखांकित करती है। निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि साहित्य और सिनेमा कई बातों में एक दूसरे के पूरक है।"[3]

साहित्यिक कृतियों पर बनी फिल्मों के कारण साहित्य की बढ़ती लोकप्रियता के बारे में विचार करते हुए हेमा देवरानी ने लिखा है- "हिंदी सिनेमा केवल सामान्य बोलचाल की हिंदी फिल्मों को ही परोस रहा है, ऐसा नहीं है । फिल्मों ने हिंदी भाषा के भाषा को अपनाकर साहित्यिक कृतियों को भी जनमानस तक पहुँचाने में अपना योगदान किया है।"[4] साहित्यिक कृतियों पर बनी फिल्में जन- मानस को उद्वेलित करती है। सिनेमा समाज को सबसे अधिक प्रभावित करनेवाली कला के रुप में माना जाता है। आज के सिनेमा ने सामाजिक मूल्यों, आधुनिक विचारधारा और लोगों की अभिरुचि के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। डॉ. शैलजा भारद्वाज ने अपनी भूमिका स्पष्ट करते हुए लिखा है-"कहा जाता है कि जिस देश का जैसा साहित्य होगा वैसा वहाँ का समाज बनेगा । आज के परिदृश्य में हम कह सकते हैं कि जिस देश का सिनेमा जैसा होगा वैसे वहाँ का समाज होगा ।"[5] इससे स्पष्ट होता है कि समाज और राष्ट्र के निर्माण में साहित्य की तरह सिनेमा की भूमिका भी महत्वपूर्ण मानी जा सकती है। फिल्मों का उद्देश्य अलग-अलग होता है। बहुत अधिक फिल्में देशप्रेम, बालविवाह, रुढ़ियों अंधविश्वासों को तोड़ने जैसे सामाजिक धर्म का निर्वाह करती है। भारतीय फिल्म का पितामह कहे जानेवाले भालजी पेंढारकरजी का नाम इनमें प्रमुख है उनकी फिल्म 'वंदे मातरम् आश्रम' ने सरकारी तंत्र में उन दिनों तहलका मचा दिया था। इस फिल्म को कई बार सेंसर का शिकार होना पड़ा। इसके अलावा वी. शांताराम, गुरुदत्त की फिल्में भी उदाहरण है। आज-तक तस्करी की समस्या पर असंख्य फिल्में बन रही है। लेकिन उनका मूल स्तर गायब है। सिनेमा देखते समय दर्शक यह समझ नहीं पाता कि सिनेमा में निर्माता और निर्देशक इतना कष्ट लेकर या सरंजाम जुटाकर क्या कहना चाहता है? वी. शांताराम की दो आँखे बारह हाथ और गुरुदत्त की 'प्यासा' एवं 'कागज के फूल' जैसी फिल्में अपना उत्साहदर्शकों तक संप्रेषित करने में सफल थी। तब सिनेमा महज व्यवसाय नहीं थी बल्कि उसमें दर्शकों के सामने आगे सोचनेवाला तरीका उनके मन में आता है। यह आवश्यक नहीं है कि साहित्य की उत्तम कृति का फिल्मांतरण भी श्रेष्ठ हो। बहुत अच्छे साहित्य और उपन्यासों पर बेहद साधारण फिल्म बनी है। प्रेमचंद की कृती पर बनी 'गोदान' इसका एक उदाहरण है। किसी साहित्यिक रचना को हु-ब-हु फिल्म बनाना कठीण है। ऐसी कोशिशों से बनी फिल्म दुसरे दर्ज की साबित हो सकती है। उसमें रचना की आत्मा भी अनुपस्थित होगी जिसे फिल्मकार के लिए ढूँढना और व्यक्त करना जरुरी है। साहित्य रचना और फिल्म की शिल्पगत भिन्नता की वजह से प्रस्तुति भी भिन्न होती है। यही वजह है कि फिल्म साहित्य पाठ का पूरी तरह अनुसरण नहीं कर सकती है "तिसरी कसम फिल्म के हिराबाई, हीरामन से कहती है कि इस इलाके में क्या सभी लोग हमेशा गाते रहते हैं? साहित्यिक पाठ में यह प्रसंग नहीं है। फिल्म की मूल कहानी में कई जगह कुछ बाते घटानी, कुछ जोड़नी पड़ी है।"[6]

महाश्वेतादेवी अपनी कहानी 'रुपाली' के फिल्मांतरण से संतृष्ट नहीं है। उनका कहना है कि फिल्म 'रुदाली' कहानी से भिन्न है। गुलजार का मत है कि कहानी की तुलना उसके फिल्मांतरण से नहीं करनी चाहिए। दोनों को भिन्न कोनों से देखना था कि फिल्म की अपनी सीमाएँ और सँभावनाएँ है। सत्यजित राय के साथ शमा जैदी ने प्रेमचंद की कहानी 'शतरंज के खिलाड़ी। पर बनी फिल्म की स्क्रिप्ट पर काम किया था। फिल्म के दौरान घटित एक रोचक प्रसंग की चर्चा उन्होंने की है।साहित्य और सिनेमा आज मानव जीवन की आवश्यकता बने हैं। इसके बिना मनुष्य का जीवन नीरस हो जाएगा।

आज के भूमंडलीकरण के युग में निरंतर गतिशीलता के कारण मानव जीवन में मनोरंजन के साथ- साथ मानवीय मूल्यों को बनाए रखने का काम साहित्य और सिनेमा के माध्यम से हो रहा है । साहित्य और सिनेमा में समस्त मानवीय सभ्यता का यथार्थ चित्रण करते हुए जनसामान्य के स्थिर भावों को गति प्रदान करने में

सहायता की है। समाज और सिनेमा दोनों अलग-अलग कलाएँ क्यों न हो किंतु दोनों का एक ही उद्देश्य है- समाज की समस्याओं को चित्रित करना और उन समस्याओं के समाधान को समाज के सामने प्रस्तुत करना। साहित्य और सिनेमा दोनों समाज को प्रभावित कर परिवर्तन लाने में प्रेरित करते हैं। भारतीय परिदृश्य में अगर हम देखें तो साहित्य की अपेक्षा सिनेमा का प्रभाव जन- मानस पर अधिक पड़ा हुआ दिखाई देता है। प्रियदर्शन के अनुसार- "भारतीय समाज पर फिल्मों का बहुत गहरा असर है। कायदे से देखें तो फिल्मों ने मनोरंजन के दूसरे माध्यमों को लगभग अपदस्थ कर डाला है। चौबीस घंटे चलने वाले टीवी के मनोरंजन वाले चैनल भी ज्यादातर फिल्मों से या फिल्मी दुनिया में मिलने वाली सामग्री से चलते हैं। एक तरफ से पूरी बीसवीं सदी में हमारे ओढ़ने- पहनने, बोलने- बतियाने के ढंग पर फिल्मों की छाया रही है।"[7] भले ही फिल्म ने मानवीय जीवन को प्रभावित किया हो फिर भी मानवीय समाज के विकास और उन्नति में साहित्य की भूमिका को भुलाया नहीं जा सकता। साहित्यकार अपने साहित्यिक रचनाओं के माध्यम से समाज की अच्छाइयों, बुराइयों और समकालीन समस्याओं को समाज के सामने अभिव्यक्त करता है और उन समस्याओं के समाधान का मार्ग प्रस्तुत करता है। इस दृष्टि से विचार करें तो सिनेमा यह मानवीय समाज काअभिन्न अंग बनकर मानव जीवन को प्रभावित कर रहा हैं।

निष्कर्ष : हिंदी सिनेमा और साहित्य के सहसंबंध को देखने के बाद सारांश रुप में हम कह सकते हैं कि साहित्य और सिनेमा दोनों में मानवीय जीवन को प्रभावित करने की क्षमता है। साहित्य के बिना समाज अधूरा है और समाज के बिना सिनेमा अधूरा है। साहित्य में समाज का हीत छुपा होता है तो सिनेमा में सामाजिक गतिविधियों का यथार्थ चित्रण होता है। दोनों को समाज से अलग नहीं किया जा सकता। साहित्य और सिनेमा का समाज तथा राष्ट्र के निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

संदर्भ सूची :-

1. 1.हिंदी सिनेमा का समाजशास्त्र- पृ.173
2. कुमार हरीश, साहित्य और सिनेमा, पृ. 11
3. कुमार हरीश, साहित्य और सिनेमा, पृ. 11, प्रथम संस्करण, 1998
4. वही, भूमिका, पृ. 8 प्रथम संस्करण, 1998
5. साहित्य और सिनेमा : बदलते परिदृश्य में संभावनाएँ और चुनौतियाँ, संपादिका, डॉ. भारद्वाज शैलजा, पृ. भूमिका से पृ. भूमिका, प्रथम संस्करण, 2016
6. सिनेमा और सामाजिक यथार्थ - पृ.72
7. संपादक. बिसारिया पुनीत, शुक्ल राजनारायण, भारतीय सिनेमा का सफरनामा, पृ. 151, प्रथम संस्करण, 2013

•